

श्रीमतिस्तु तथानंग-सेनासौ भोगनिस्पृहे। यथायोग्यं समादाय दीक्षां दुःखौघनाशिनीम् ॥१६२॥
 स्वस्वभावानुसारेण स्वर्गलोकं समाश्रिते। आराध्य शासनं जैनं प्रापुः के के न सत्सुखम् ॥१६३॥
 इत्थं श्रीजिनसूत्रतो विरचिताहिंसाकथा शर्मणे संक्षेपेण मयाल्पबुद्धिवशिना धर्मानुरागेण च।
 नाना सारसुखप्रमोदजननी विघ्नौघनिर्नाशिनी भव्यानां भवशान्तये भवतु वै संभाविता मानसे ॥१६४॥
 जातः श्रीमति मूलसंघतिलके श्रीकुन्दकुन्दान्वये श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुः सद्बोधिसिन्धुर्महान्।
 तच्छिष्यः परमार्थपंडितनुतः श्रीसिंहनन्दीमुनिर्भव्यानां भवतारकोतिचतुरः सूरिशिचरं नन्दतु ॥१६५॥
 इति कथाकोशेऽहिंसाव्रते मृगसेनधीवरस्य कथा समाप्ता।

२६. वसुनृपस्य कथा

नत्वा जिनं जगद्वन्धुं सुरासुरसमर्चितम्। वक्ष्ये सत्यवचोदोषी चरित्रं वसुभूपतेः ॥१॥
 नगर्यां स्वस्तिकावत्यां राजा विश्वावसुः सुधीः। तद्राज्ञी श्रीमती तस्यां वसुनामा सुतोभवत् ॥२॥

अपनी शक्ति के अनुसार तपस्या कर उन दोनों ने भी मृत्यु के अन्त में स्वर्ग प्राप्त किया। सच है-
 जिनशासन की आराधना कर किस किसने सुख प्राप्त न किया अर्थात् जिसने जिनधर्म ग्रहण किया
 उसे नियम से सुख मिला है ॥१६२-१६३॥

इस प्रकार मुझ अल्पबुद्धि ने धर्म-प्रेम के वश हो यह अहिंसाव्रत की पवित्र कथा जैनशास्त्र के
 अनुसार लिखी है। यह सब सुखों की देने वाली माता है और विघ्नों को नाश करने वाली है। इसे आप
 लोग हृदय में धारण करें। वह इसलिए कि इसके द्वारा आपको शान्ति प्राप्त होगी ॥१६४॥

मूलसंघ के प्रधान प्रवर्तक श्रीकुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा में मल्लिभूषण गुरु हुए। वे ज्ञान के
 समुद्र थे। उनके शिष्य श्रीसिंहनन्दी मुनि हुए। वे बड़े आध्यात्मिक विद्वान् थे। उन्हें अच्छे-अच्छे
 परमार्थवित्-अध्यात्मशास्त्र के जानकार विद्वान् नमस्कार करते थे। वे सिंहनन्दी मुनि आपके लिए
 संसार-समुद्र से पार करने वाले होकर संसार में चिरकाल तक बड़े। उनका यशःशरीर बहुत समय तक
 प्रकाशित रहे ॥१६५॥

२६. वसुराजा की कथा

संसार के बन्धु और देवों द्वारा पूज्य श्रीजिनेन्द्रदेव को नमस्कार कर झूठ बोलने से नष्ट होने वाले
 वसुराजा का चरित्र मैं लिखता हूँ ॥१॥

स्वस्तिकावती नाम की एक सुन्दर नगरी थी। उसके राजा का नाम विश्वावसु था। विश्वावसु
 की रानी श्रीमती थी। उसके एक वसु नाम का पुत्र था ॥२॥

वहीं एक क्षीरकदम्ब नामक उपाध्याय रहता था। वह बड़ा सुचरित्र और सरल स्वभावी था।
 जिनभगवान् का वह भक्त था और होम, शान्तिविधान आदि जैन क्रियाओं द्वारा गृहस्थों के लिए

तत्र क्षीरकदम्बाख्यः क्षीरवन्निर्मलाशायः। उपाध्यायो महाधीमान् विप्रवंशशिरोमणिः ॥३॥
 श्रीजिनेन्द्रपदाम्भोज-महापूजाविधायकः। जैनहोमक्रियामंत्रै-र्भव्यानां शान्तिदायकः ॥४॥
 तद्भार्या स्वस्तिमत्याख्या तयोः पुत्रश्च पर्वतः। पापी दुष्कर्मकर्त्ताभूद्विचित्रा संसृतेः स्थितिः ॥५॥
 एको वैदेशिको विप्रो नारदो निर्मदो महान्। जिनेन्द्रपादपद्मेषु चञ्चरीकोतिनिश्चलः ॥६॥
 स वसुः पर्वतः सोपि नारदश्च गुणोज्ज्वलः। त्रयः क्षीरकदम्बस्य पार्श्वे शास्त्रं पठन्ति ते ॥७॥
 वसुनारदनामानौ सञ्जातौ शास्त्रकोविदौ। पर्वतस्य स्वपापेन शास्त्रं नायाति निर्मलम् ॥८॥
 एकदा स्वपतिं प्राह कोपात्स्वस्तिमती प्रिया। स्वपुत्रं भो त्वकं नैव व्यक्तं पाठयसीति च ॥९॥
 प्रोक्तं क्षीरकदम्बेन पुत्रस्ते मूढमानसः। किञ्चित् वेत्ति पापात्मा मया किं क्रियते प्रिये ॥१०॥
 विश्वासार्थं ततस्तेन त्रयश्छात्राः स्वबुद्धितः। प्रोक्ता भो पुत्रका यूयं शीघ्रमेतैः कपर्दकैः ॥११॥
 भक्षयित्वापणं गत्वा चणकांश्च कपर्दकान्। समादाय स्वचातुर्यात्समागच्छथ मन्दिरम् ॥१२॥
 ततस्ते तान्समादाय निर्गता गुरुवाक्यतः। गत्वापणं स निर्बुद्धिः पर्वतस्तैः कपर्दकैः ॥१३॥

शान्ति-सुखार्थ अनुष्ठान करना उसका काम था। उसकी स्त्री का नाम स्वस्तिमती था। उसे पर्वत नाम का एक पुत्र था। भाग्य से वह पापी और दुर्व्यसनी हुआ। कर्मों की कैसी विचित्र स्थिति है पिता तो कितना धर्मात्मा और सरल और उसका पुत्र दुराचारी। इसी समय एक विदेशी ब्राह्मण नारद, जो कि निरभिमानी और सच्चा जिनभक्त था, क्षीरकदम्ब के पास पढ़ने के लिए आया। राजकुमार वसु, पर्वत और नारद ये तीनों एक साथ पढ़ने लगे। वसु और नारद की बुद्धि अच्छी थी, सो वे थोड़े ही समय में अच्छे विद्वान् हो गए। रहा पर्वत सो एक तो उसकी बुद्धि ही खराब और पाप के उदय से उसे कुछ नहीं आता जाता था। अपने पुत्र की यह हालत देखकर उसकी माता ने एक दिन अपने पति से गुस्सा होकर कहा-जान पड़ता है, आप बाहर के लड़कों को तो अच्छी तरह पढ़ाते हैं और खास अपने पुत्र पर आपका ध्यान नहीं है, उसे आप अच्छी तरह नहीं पढ़ाते। इसीलिए उसे इतने दिन तक पढ़ते रहने पर भी कुछ नहीं आया। क्षीरकदम्ब ने कहा-इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है। मैं तो सबके साथ एक सा श्रम करता हूँ। तुम्हारा पुत्र ही मूर्ख है, पापी है, वह कुछ समझता ही नहीं। बोलो, अब इसके लिए मैं क्या करूँ? स्वस्तिमती को इस बात पर विश्वास हो, इसलिए उसने तीनों शिष्यों को बुलाकर कहा-पुत्रों, देखो तुम्हें यह एक-एक पाई दी जाती है, इसे लेकर तुम बाजार जाओ; और अपने बुद्धिबल से इसके द्वारा चने लेकर खा आओ और पाई पीछे वापस भी लौटा लाओ। तीनों गए ॥३-१२॥

उनमें पर्वत एक जगह से चने मोल लेकर और वहीं खा पीकर सूने हाथ घर लौट आया। अब रहे वसु और नारद, सो इन्होंने पहले तो चने मोल लिए और फिर उन्हें इधर-उधर घूमकर बेचा, जब उनकी पाई वसूल हो गई तब बाकी बचे चनों को खाकर वे लौट आए। आकर उन्होंने गुरुजी को अमानत वापस सौंप दी। इसके बाद क्षीरकदम्ब ने एक दिन तीनों को आटे के बने हुए तीन बकरे देकर उनसे कहा-देखो, इन्हें ले जाकर और जहाँ कोई न देख पाए ऐसे एकान्त स्थान में इनके कानों को छेद

चणकान्भक्षयित्वा च रिक्तः स्वगृहमागतः। अहो पुण्यं विना जन्तोः क्व बुद्धिः प्रीतिदायिनी ॥१४॥
 तौ द्वौ विचक्षणौ गत्वा बहुस्थानेषु तान्मुदा। अर्थव्याजेन भुक्त्वोच्चै-रागतौ सकपर्दकौ ॥१५॥
 तथा पिष्टमयांश्छागान्दत्त्वा तेन त्रयोपि ते। यत्र कोपि न भो पुत्राः पश्यत्येषां च तत्र वै ॥१६॥
 कर्णच्छेदो विधातव्यः प्रोक्त्वेति प्रेषिताः पुनः। ततस्ते गुरुवाक्येन तान्गृहीत्वा विनिर्ययुः ॥१७॥
 पर्वतस्तु क्वचिद्देशे तत्कृत्वा गृहमागतः। गत्वा सर्वत्र तौ द्वौ च वनादौ निजमानसे ॥१८॥
 अहो सर्वे प्रपश्यन्ति चन्द्रार्कग्रहतारकाः। व्यन्तराश्चामरा धीराः पक्षिणः पशवस्तथा ॥१९॥
 ज्ञानिनो मुनयश्चापि वार्यते तन्तु केन च। इति ज्ञात्वा न तत्कृत्वा गृहीत्वा तौ तथैव च ॥२०॥
 समागत्य गृहं भक्त्या नत्वा क्षीरकदम्बकम्। स्ववृत्तं प्राहतुः सर्वे बुद्धिः कर्मानुसारिणी ॥२१॥
 उपाध्यायस्तदावीक्ष्य चातुरीं छात्रयोस्तयोः। जगौ स्वस्तिमतीं भार्या दृष्टं रे सर्वचेष्टितम् ॥२२॥
 एकदा तेन विप्रेण स वसुः कृतदोषकः। यष्ट्या संकुट्यमानस्तु स्वस्तिमत्या सुरक्षितः ॥२३॥
 तस्यै तेन वरो दत्तस्तयोक्तं पुत्र मे यदा। कार्यं भविष्यति व्यक्तं तदायं दीयते त्वया ॥२४॥
 अथैकदा सुधीः क्षीर-कदम्बोसौ विचक्षणः। सेव्यमानस्त्रिभिच्छात्रै-रटव्यां पठने गतः ॥२५॥

लाओ। गुरु की आज्ञानुसार तीनों फिर इस नये काम के लिए गए। पर्वत ने तो एक जंगल में जाकर बकरे का कान छेद डाला। वसु और नारद बहुत जगह गए, सर्वत्र उन्होंने एकान्त स्थान ढूँढ डाला, पर उन्हें कहीं उनके मन योग्य स्थान नहीं मिला अथवा यों कहिए कि उनके विचारानुसार एकान्त स्थान कोई था ही नहीं। वे जहाँ पहुँचते और मन में विचार करते वहीं उन्हें चन्द्र, सूर्य, तारा, देव, व्यन्तर, पशु, पक्षी और अवधिज्ञानी मुनि आदि जान पड़ते। वे उस समय यह विचार कर, कि ऐसा कोई स्थान ही नहीं जहाँ कोई न देखता हो, वापस घर लौट आए। उन्होंने उन बकरों के कानों को नहीं छेदा। आकर उन्होंने गुरुजी को नमस्कार किया और अपना सब हाल उनसे कह सुनाया। सच है-बुद्धि कर्म के अनुसार ही हुआ करती है। उनकी बुद्धि की इस प्रकार चतुरता देखकर उपाध्याय जी ने अपनी प्रिया से कहा-क्यों देखी सबकी बुद्धि और चतुरता? अब कहा, दोष मेरा या पर्वत के भाग्य का? ॥१३-२२॥

एक दिन की बात है कि वसु से कोई ऐसा अपराध बन गया, जिससे उपाध्याय ने उसे बहुत मारा। उस समय स्वस्तिमती ने बीच में पड़कर वसु को बचा लिया। वसु ने अपनी बचाने वाली गुरु माता से कहा-माता, तुमने मुझे बचाया इससे मैं बड़ा उपकृत हुआ। कहिए तुम्हें क्या चाहिए? वहीं लाकर मैं तुम्हें प्रदान करूँ। स्वस्तिमती ने उत्तर में राजकुमार से कहा-पुत्र, इस समय तो मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है, पर जब होगी तब मागूँगी। तू मेरे इस वर को अभी अपने ही पास रख ॥२३-२४॥

एक दिन क्षीरकदम्ब के मन में प्रकृति की शोभा देखने के लिए उत्कंठा हुई वह अपने साथ तीनों शिष्यों को भी इसलिए लिवा ले गया कि उन्हें वहीं पाठ भी पढ़ा दूँगा। वह एक सुन्दर बगीचे में पहुँचा। वहाँ कोई अच्छा पवित्र स्थान देखकर वह अपने शिष्यों को बृहदारण्य का पाठ पढ़ाने लगा। वहीं पर

तत्र ते स्वच्छभूभागे चत्वारो निजलीलया। बृहदारण्यकं शास्त्रं पठन्ति स्म प्रयुक्तितः ॥२६॥
 तत्रैकस्मिन्प्रदेशे तु महान्तौ चारणौ मुनी। स्वस्वाध्यायं गृहीतुं च संस्थितौ भुवनोत्तमौ ॥२७॥
 तान्दृष्ट्वा लघुना प्रोक्तं मुनिना विनयेन भो। पश्य स्वामिन्कथं चैते संपठन्ति शुचि क्षितौ ॥२८॥
 तच्छ्रुत्वा स गुरु प्राह मुनीन्द्रो ज्ञानलोचनः। एतेषु द्वौ प्रवर्तते स्वपुण्यादूर्ध्वगामिनौ ॥२९॥
 द्वौ नरौ निजपापेन निन्द्यौ नरकगामिनौ। स्यात्स्वकर्मवशाज्जन्तुः सुखदुःखैकभाजनम् ॥३०॥
 मुनेर्वाक्यं समाकर्ण्य सुधीः क्षीरकदम्बवाक्। छात्रान्गृहं विसृज्याशु स्वयं नत्वा मुनीश्वरम् ॥३१॥
 पृष्ट्वाभ्यो मुने ब्रूहि जैनतत्त्वविदांवर। कौ भाविसुखिनौ देव कौ द्वौ संभाविनारकौ ॥३२॥
 ततोऽसौ मदनद्वेषी संजगाद महामुनिः। सुधीर्विप्रकुलाधीश त्वं जिनेन्द्रप्रभक्तिमान् ॥३३॥
 नारदश्चोर्ध्वगामी स्यात्स्वपुण्योत्करसम्बलः। द्वौ छात्रौ ते ध्रुवं भावि-नारकौ वसुपर्वतौ ॥३४॥
 तत्समाकर्ण्य विप्रोसौ नत्वा मुनिपदद्वयम्। पुत्रखेदात्सखेदस्तु चिन्तयन्निजचेतसि ॥३५॥
 काले कल्पशते चापि नान्यथा मुनिभाषितम्। ततः स्वगृहमायातः सर्वशास्त्रविचक्षणः ॥३६॥
 एकदा स महाराजः सुधीर्विश्वावसुस्तराम्। वसुं राज्ये समारोप्य सम्प्राप्तः सुतपोवनम् ॥३७॥
 तदा राज्यं प्रकुर्वाणो वसुश्चैकदिने मुदा। क्रीडां कर्तुं वनं गत्वा तत्राकाशाच्च पक्षिणः ॥३८॥
 प्रस्रवत्य पतितान्वीक्ष्य विस्मयाक्रान्तमानसः। अत्रास्ति कारणं किञ्चि-दिति ज्ञात्वा स्वचेतसि ॥३९॥

दो ऋद्धिधारी महामुनि स्वाध्याय कर रहे थे। उनमें से छोटे मुनि ने क्षीरकदम्ब को पाठ पढ़ाते देखकर बड़े मुनिराज से कहा-प्रभो, देखिए कैसे पवित्र स्थान में उपाध्याय अपने शिष्यों को पढ़ा रहे हैं। गुरु ने कहा-अच्छ है, पर देखो, इनमें से दो तो पुण्यात्मा हैं और वे स्वर्ग में जाएँगे और दो पाप के उदय से नरकों के दुःख सहेंगे। सच है- ॥२५-३०॥

कर्मों के उदय से जीवों को सुख या दुःख भोगना ही पड़ता है। मुनि के वचन क्षीरकदम्ब ने सुन लिए। वह अपने विद्यार्थियों को घर भेजकर मुनिराज के पास गया। उन्हें नमस्कार कर उसने पूछा- हे भगवन्! हे जैन सिद्धान्त के उत्तम विद्वान्! कृपाकर मुझे कहिए कि हममें से कौन दो स्वर्ग जाकर सुखी होंगे और कौन दो नरक जाएँगे? काम के शत्रु मुनिराज ने क्षीरकदम्ब से कहा-भव्य, स्वर्ग जाने वालों में एक तो तू जिनभक्त और दूसरा धर्मात्मा नारद हैं और वसु तथा पर्वत पाप के उदय से नरक जाएँगे। क्षीरकदम्ब मुनिराज को नमस्कार कर अपने घर आया। उसे इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि उसका पुत्र नरक में जायेगा क्योंकि मुनियों का कहा अनन्तकाल में भी झूठा नहीं होता ॥३१-३६॥

एक दिन कोई ऐसा कारण देख पड़ा, जिससे वसु के पिता विश्वावसु अपना राज-काज वसु को सौंपकर आप साधु हो गए। राज्य अब वसु करने लगा। एक दिन वसु वन-विहार के लिए उपवन में गया हुआ था। वहाँ उसने आकाश से लुढ़क कर गिरते हुए एक पक्षी को देखा। देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उसने सोचा पक्षी के लुढ़कते हुए गिरने का कोई कारण यहाँ अवश्य होना चाहिए। उसकी शोध लगाने को जिधर से पक्षी गिरा था उधर ही लक्ष्य बाँधकर उसने बाण छोड़ा। उसका लक्ष्य व्यर्थ न गया। यद्यपि उसे यह नहीं जान पड़ा कि क्या गिरा, पर इतना उसे विश्वास हो गया कि उसके बाण के साथ

मुक्त्वा बाणं परीक्षार्थं तत्प्रदेशं प्रति ध्रुवम् । तथा तं स्खलितं दृष्ट्वा गत्वा तत्र स्वयं पुनः ॥४०॥
 मत्वा प्रभुः करस्पर्शा-दाकाशस्फटिकोद्भवम् । महास्तंभं तमानीय स्वगेहं गूढवृत्तितः ॥४१॥
 तेन स्तंभेन निर्माप्य महापादचतुष्टयम् । सिंहासनं समारुह्य स्वयं लोके स धूर्तकः ॥४२॥
 सत्यवाक्यप्रभावेन वसोः सिंहासनं महत् । आकाशे संस्थितं चेति कृत्वा स्फीतिं प्रपञ्चतः ॥४३॥
 सेव्यमानो जनैर्नित्यं संस्थितः कपटाश्रितः । जन्तुर्मायारतो मूढः किं करोति न वञ्चनम् ॥४४॥
 अथ क्षीरकदम्बोसौ सदृष्टिर्जिनभक्तिभाक् । विरक्तः संसृतेर्भूत्वा मुनिर्जातो गुणोज्ज्वलः ॥४५॥
 तपः कृत्वा जिनद्रोक्तं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम् । प्रान्ते विधाय संन्यासं स्वर्गलोकं सुधीर्ययौ ॥४६॥
 पर्वतस्तु पितुः स्थाने स्थित्वा छात्रान्स्वबुद्धितः । शास्त्रं पाठयतिस्मोच्चैः स्ववृत्तिस्थितिहेतवे ॥४७॥
 नारदोपि सुधीः श्रीम-ज्जिनपादाब्जषट्पदः । तदा देशान्तरं प्राप्तो लीलया शुद्धमानसः ॥४८॥
 ततो भूरि दिनैः सोपि नारदः सर्वशास्त्रवित् । पर्वतस्य समीपं तु समायातो विनोदतः ॥४९॥
 तत्प्रस्तावे दुरात्मासौ पर्वतः पापमण्डितः । अजैर्यष्टव्यमित्येतद्वाक्ये शाखे समागते ॥५०॥

ही कोई भारी वस्तु गिरी जरूर है। जिधर से किसी वस्तु के गिरने की आवाज उसे सुनाई पड़ी थी वह उधर ही गया पर तब भी उसे कुछ नहीं देख पड़ा। यह देख उसने उस भाग को हाथों से टटोलना शुरू किया। हस्तस्पर्श से उसे बहुत निर्मल खम्भा, जो कि स्फटिकमणि का बना था, जान पड़ा। वसुराजा उसे गुप्तीति से अपने महल पर ले आया। वसु ने उस खम्भे के चार पाए बनवाएँ और उन्हें अपने न्याय-सिंहासन में लगवा दिये। उन पायों के लगने से सिंहासन ऐसा जान पड़ने लगा मानों वह आकाश में ठहरा हुआ हो। वसु अब उसी पर बैठकर राज्यशासन करने लगा। उसने सब जगह यह प्रकट कर दिया कि “राजा वसु बड़ा ही सत्यवादी है, उसकी सत्यता के प्रभाव से उसका न्याय-सिंहासन आकाश में ठहरा हुआ है।” इस प्रकार कपट की आड़ में वह सर्वसाधारण के बहुत ही आदर का पात्र हो गया। सच है— ॥३७-४४॥

मायावी पुरुष संसार में क्या ठगाई नहीं करते! इधर सम्यग्दृष्टि, जिनभक्त क्षीरकदम्ब संसार से विरक्त होकर तपस्वी हो गया और अपनी शक्ति के अनुसार तपस्या कर अन्त में समाधिमरण द्वारा उसने स्वर्ग लाभ लिया। पिता का उपाध्याय पद अब पर्वत को मिला। पर्वत की जितनी बुद्धि थी, जितना ज्ञान था, उसके अनुकूल वह पिता के विद्यार्थियों को पढ़ाने लगा। उसी वृत्ति के द्वारा उसका निर्वाह होता था। क्षीरकदम्ब के साधु हुए बाद ही नारद भी वहाँ से कहीं अन्यत्र चल दिया। वर्षों तक नारद विदेशों में घूमा, घूमते फिरते वह फिर भी एक बार स्वस्तिपुरी की ओर आ निकला। वह अपने सहाध्यायी और गुरुपुत्र पर्वत से मिलने को गया। पर्वत उस समय अपने शिष्यों को पढ़ा रहा था। साधारण कुशल प्रश्न के बाद नारद वहीं बैठ गया और पर्वत का अध्यापन कार्य देखने लगा। प्रकरण कर्मकाण्ड का था। वहाँ एक श्रुति थी—“अजैर्यष्टव्यमिति।” दुराग्रही पापी पर्वत ने उसका अर्थ किया कि “अजैश्छागैः प्रयष्टव्यमिति” अर्थात् बकरों की बलि देकर होम करना चाहिए। उसमें बाधा देकर नारद ने कहा—नहीं, इस श्रुति का यह अर्थ नहीं है। गुरुजी ने तो हमें इसका अर्थ बतलाया था कि

अजैश्छागैः प्रयष्टव्यं व्याख्यानं कृतवानिति । तच्छ्रुत्वा नारदेनोक्त-मजैर्धान्यैस्त्रिवार्षिकैः ॥५१॥
 उपाध्यायेन सम्प्रोक्तं तदस्माकमिति स्फुटम् । त्वया किं लपितं मूढ महापापविधायकम् ॥५२॥
 पापात्मा पर्वतः प्राह यष्टव्यं छागकैर्ध्रुवम् । अहो जानन्नपि प्राणी वक्त्येवं भाविदुर्गतिः ॥५३॥
 तौ विवादे तदा कृत्वा जिह्वाच्छेदस्थितिं ध्रुवम् । वचः प्रमाणीकृत्योच्चैः संस्थितौ वसुभूपतेः ॥५४॥
 तदा स्वस्तिमती प्राह पर्वतं रे दुराशयम् । विरूपकं त्वया चक्रे व्याख्यानं पापकारणम् ॥५५॥
 पिता ते जैनधर्मज्ञो नित्यं पूतैस्त्रिवार्षिकैः । धान्यैरेव करोति स्म यज्ञं पुण्याशयः सुधीः ॥५६॥
 इत्यादिकं क्रुधा प्रोक्त्वा पुनः पुत्रस्य मोहतः । ब्राह्मणी सा द्रुतं गत्वा वसोः पार्श्वं जगाद च ॥५७॥
 देहि मे तं वरं देव प्रस्तावश्चाद्य विद्यते । त्वया प्रमाणीकर्तव्यं पर्वतस्य वचः स्फुटम् ॥५८॥

“अजैस्त्रिवार्षिकैर्धान्यैः प्रयष्टव्यम्” अर्थात्-तीन वर्ष के पुराने धान से, जिसमें उत्पन्न होने की शक्ति न हो, होम करना चाहिए । तू यह क्या अनर्थ करता है जो उलटा ही अर्थ कर दिया? उस पर पापी पर्वत ने दुराग्रह के वश हो यही कहा कि नहीं तुम्हारा कहना सर्वथा मिथ्या है । असल में ‘अज’ शब्द का अर्थ बकरा होता है और उसी से होम करना चाहिए । ठीक कहा है-जिसे दुर्गति में जाना होता है, वही पुरुष जानकर भी ऐसा झूठ बोलता है ॥४५-५३॥

तब दोनों में सच्चा कौन है, इसके निर्णय के लिए उन्होंने राजा वसु को मध्यस्थ चुना । उन्होंने परस्पर में प्रतिज्ञा की कि जिसका कहना झूठ हो उसकी जबान काट दी जाए । पर्वत की माँ को जब इस विवाद का और परस्पर की प्रतिज्ञा का हाल मालूम हुआ तब उसने पर्वत को बुलाकर बहुत डाँटा और गुस्से में आकर कहा-पापी, तूने यह क्या अनर्थ किया? क्यों उस श्रुति का उलटा अर्थ किया? तुझे नहीं मालूम कि तेरा पिता जैनधर्म का पूर्ण श्रद्धालु था और वह ‘अजैष्टव्यम्’ इसका अर्थ तीन वर्ष के पुराने धान से होम करने को कहता था और स्वयं भी वह पुराने धान ही से सदा होमादिक किया करता था । स्वस्तिमती ने उसे और भी बहुत फटकारा, पर उसका फल कुछ नहीं निकला । पर्वत अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ बना रहा । पुत्र का इस प्रकार दुराग्रह देखकर वह अधीर हो उठी । एक ओर पुत्र के अन्याय पक्ष का समर्थन होकर सत्य की हत्या होती है और दूसरी ओर पुत्र-प्रेम उसे अपने कर्तव्य से विचलित करता है । अब वह क्या करे? पुत्र-प्रेम में फँसकर सत्य की हत्या करे या उसकी रक्षा कर अपना कर्तव्य पालन करे? वे बड़े संकट में पड़ी । आखिर दोनों शक्तियों का युद्ध होकर पुत्र-प्रेम ने विजय प्राप्त कर उसे अपने कर्तव्य पथ से गिरा दिया, सत्य की हत्या करने को उसे सन्नद्ध किया । वह उसी समय वसु के पास पहुँची और उससे बोली-पुत्र, तुम्हें याद होगा कि मेरा एक वर तुमसे पाना बाकी है । आज उसकी मुझे जरूरत पड़ी है । इसलिए अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह कर मुझे कृतार्थ करो । बात यह है पर्वत और नारद का किसी विषय पर झगड़ा हो गया है । उसके निर्णय के लिए उन्होंने तुम्हें मध्यस्थ चुना है । इसलिए मैं तुम्हें कहने को आई हूँ कि तुम पर्वत के पक्ष का समर्थन करना । सच है- ॥५४-५८॥

स्वयं पापीजनश्चैवं सपापान्कुरुते परान्। विषोपेतो यथा सर्पः करोति सविषाञ्जनान् ॥५९॥
 प्रभाते च तयोर्वादे पापात्मा वसुभूपतिः। उपाध्यायोदितं वाक्यं जानन्नपि हृदि स्फुटम् ॥६०॥
 पर्वतस्य वचः सत्यं सम्प्रोक्त्वेति क्षितौ तदा। कष्टादाकण्ठपर्यन्तं प्रविष्टो विष्टरान्वितः ॥६१॥
 नारदः प्राह भो भूप यथार्थं गुरुभाषितम्। अद्यापि च द्रुतं ब्रूहि मा गास्त्वं दुर्गतिं वृथा ॥६२॥
 इत्युच्चैर्भीणितः सोपि वसुभूपः स्वपापतः। पर्वतोक्तं भवेत्सत्यं प्रोक्त्वा भूमिं तरां श्रितः ॥६३॥
 ततो मृत्वातिकष्टेन सप्तमं नरकं गतः। पापिनां दुष्टचित्ताना-मीदृशी कुमतिर्भवेत् ॥६४॥
 तस्मात्प्राणक्षये चापि कष्टकोटिविधायकम्। असत्यवचनं सदिर्भनं वाच्यं शुभमिच्छुभिः ॥६५॥

जो स्वयं पापी होते हैं वे दूसरों को भी पापी बना डालते हैं। जैसे सर्प जहरीला होता है और जिसे काटता है उसे भी विषयुक्त कर देता है। पापियों का यह स्वभाव ही होता है ॥५९॥

राजसभा लगी हुई थी। बड़े-बड़े कर्मचारी यथास्थान बैठे हुए थे। राजा वसु भी एक बहुत सुन्दर रत्न-जड़े सिंहासन पर बैठा हुआ था। इतने में पर्वत और नारद अपना न्याय कराने के लिए राजसभा में आए। दोनों ने अपना-अपना कथन सुनाकर अन्त में किसका कहना सत्य है और गुरुजी ने अपने को “अजैर्यष्टव्यम्” इसका क्या अर्थ समझाया था, इसका खुलासा करने का भार वसु पर छोड़ दिया। वसु उक्त वाक्य का ठीक अर्थ जानता था और यदि वह चाहता तो सत्य की रक्षा कर सकता था, पर उसे अपनी गुराणी जी के माँगे हुए वर ने सत्यमार्ग से ढकेल कर आग्रही और पक्षपाती बना दिया। मिथ्या आग्रह के वश हो उसने अपनी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा की कुछ परवाह न कर नारद के विरुद्ध फैसला दिया। उसने कहा कि जो पर्वत कहता है वही सत्य है और गुरुजी ने हमें ऐसा ही समझाया था कि “अजैर्यष्टव्यम्” इसका अर्थ बकरों को मारकर उनसे होम करना चाहिए। प्रकृति को उसका यह महा अन्याय सहन नहीं हुआ। उसका परिणाम यह हुआ कि राजा वसु जिस स्फटिक के सिंहासन पर बैठकर प्रतिदिन राजकार्य करता था और लोगों को यह कहा करता था कि मेरे सत्य के प्रभाव से मेरा सिंहासन आकाश में ठहरा हुआ है, वही सिंहासन वसु की असत्यता से टूट पड़ा और पृथ्वी में घुस गया। उसके साथ ही वसु भी पृथ्वी में जा धँसा। यह देख नारद ने उसे समझाया- महाराज, अब भी सत्य-सत्य कह दीजिए, गुरुजी ने जैसा अर्थ कहा था वह प्रकट कर दीजिए। अभी कुछ नहीं गया। सत्यव्रत आपकी इस संकट से अवश्य रक्षा करेगा। कुगति में व्यर्थ अपने आत्मा को न ले जाइए। अपनी इस दुर्दशा पर भी वसु को दया नहीं आयी। वह और जोश में आकर बोला-नहीं, जो पर्वत कहता है वही सत्य है। उसका इतना कहना था कि उसके पाप के उदय ने उसे पृथ्वीतल में पहुँचा दिया। वसु काल के सुपुर्द हुआ। मरकर वह सातवें नरक में गया। सच है जिसका हृदय दुष्ट और पापी होता है उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और अन्त में उन्हें कुगति में जाना पड़ता है। इसलिए जो अच्छे पुरुष हैं और पाप से बचना चाहते हैं उन्हें प्राणों पर कष्ट आने पर भी कभी झूठ न बोलना

तदा तं पर्वतं दुष्टं बहिः कृत्वा खरादिभिः। नारदः पूजितः सर्वैः सज्जनैर्भक्तिभारतः ॥६६॥
 नारदोपि सुधीस्तत्र जैनधर्मधुरन्धरः। सर्वशास्त्रप्रवीणोऽसौ सारधर्मोपदेशतः ॥६७॥
 राज्यं गिरितटाख्याया नगर्याः प्राप्य पुण्यतः। दीर्घकालं सुखं भुक्त्वा दानपूजाव्रतान्वितः ॥६८॥
 प्रान्ते वैराग्यभावेन जैनीं दीक्षां सुखप्रदाम्। समादाय मुनिर्भूत्वा भव्यान्सम्बोध्य शुद्धधीः ॥६९॥
 स्वयं रत्नत्रयं पूतं समाराध्य विचक्षणः। कृत्वा सारतपः स्वामी जिनपादाब्जभक्तिमान् ॥७०॥
 प्राप्तः सर्वार्थसिद्धिं हि प्रोल्लसच्छर्मदायिनीम्। जैनधर्मप्रसादेन किं न स्याद्भव्यदेहिनाम् ॥७१॥
 जित्वा सर्वकुवादिनो दृढतरः श्रीनारदो निर्मदः श्रीमत्सारजिनेन्द्रशासनमहासिन्धोर्लसच्चन्द्रमाः।
 धृत्वा सारतपः प्रसिद्धमहिमा सर्वार्थसिद्धिं श्रितः स श्रीमान्निजवंशमण्डनमणिः कुर्यात्सतां मंगलम् ॥७२॥

इति कथाकोशेऽनृतदोषाख्याने वसुराज्ञः कथा समाप्ता।

२७. श्रीभूतेः कथा।

श्रीजिनं शर्मदं नत्वा सुरासुरसमर्चितम्। स्तेयदोषोद्भवं वृत्तं वक्ष्ये श्रीभूतिसंश्रितम् ॥१॥
 सुधीः सिंहपुरे राजा सिंहसेनोतिधार्मिकः। रामदत्ता महाराज्ञी सर्वकार्यविचक्षणा ॥२॥

चाहिए। पर्वत की यह दुष्टता देखकर प्रजा के लोगों ने उसे गधे पर बैठा कर शहर से निकाल बाहर किया और नारद का बहुत आदर-सत्कार किया। नारद अब वहीं रहने लगा। वह बड़ा बुद्धिमान् और धर्मात्मा था। सब शास्त्रों में उसकी गति थी। वह वहाँ रहकर लोगों को धर्म का उपदेश दिया करता, भगवान् की पूजा करता, पात्रों को दान देता। उसकी यह धर्मपरायणता देखकर वसु के बाद राज्य-सिंहासन पर बैठने वाला राजा उस पर बहुत खुश हुआ। उस खुशी में उसने नारद को गिरितट नामक नगरी का राज्य भेंट में दे दिया। नारद ने बहुत समय तक उस राज्य का सुख भोगा। अन्त में संसार से उदासीन होकर उसने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। मुनि होकर उसने अनेक जीवों को कल्याण के मार्ग में लगाया और तपस्या द्वारा पवित्र रत्नत्रय की आराधना कर आयु के अन्त में वह सर्वार्थसिद्धि गया, जो कि सर्वोत्तम सुख का स्थान है। सच है, जैनधर्म की कृपा से भव्य पुरुषों को क्या प्राप्त नहीं होता ॥६०-७१॥

निरभिमानी नारद अपने धर्म पर बड़ा दृढ़ था। उसने समय-समय पर और धर्म वालों के साथ शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त कर जैनधर्म की खूब प्रभावना की। यह जिनशासन रूप महान् समुद्र के बढ़ाने वाला चन्द्रमा था। ब्राह्मणवंश का एक चमकता हुआ रत्न था। अपनी सत्यता के प्रभाव से उसने बहुत सिद्धि प्राप्त कर ली थी। अन्त में वह तपस्या कर सर्वार्थसिद्धि गया। वह महात्मा नारद सबका कल्याण करे ॥७२॥

२७. श्रीभूति-पुरोहित की कथा

जिन्हें स्वर्ग के देवता बड़ी भक्ति के साथ पूजते हैं, उन सुख के देने वाले जिनभगवान् को नमस्कार कर मैं श्रीभूत-पुरोहित का उपाख्यान कहता हूँ, जो चोरी करके दुर्गति में गया है। सिंहपुर नाम